धर्मपाल अङ्क

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

वर्ष १३		बु० सं० २४९२		वार्षिक मूल्य	२)
अङ्क ६	भाद्रपद	वि० सं० २००५	सितम्बर	विदेशों में	२॥)
१३६		ई० सं० १९४८		एक प्रति का	=)

विषय सूची

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मुखपत्र है। "धर्म-दूत" प्रात पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्म-दूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिए, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाक खर्च भेजे अप्रकाशित कविता वा लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अंक में जिनका लेख वा कविता छपेगी, वह अंक उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्म-दूत" में सिर्फ बौद्ध धर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

व्यवस्थापक—

"धर्म-दूत", धर्मपाल रोड, सारनाथ (बनारस)

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे-कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

"भिक्षुओं! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—भिक्षु धर्मरत्न

वर्ष १३ | सारनाथ, अगस्त बु० सं० २४९२ / ई० सं० १९४८ | अङ्क ४

बुद्धवचनामृत

बुद्धवचनामृत

असंयमी, दुराचारी हो देश का अन्न खाने से अग्नि-शिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है।

\+ + + +

हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म के पहनने से तेरा क्या लाभ है? भीतर तेरा रागादि मलों से परिपूर्ण है, बाहर क्या सजाता है?

\+ + + +

सोनार जैसे चाँदी के मैल को क्रमशः क्षण क्षण थोड़ा थोड़ा जलाकर साफ करता है वैसे ही बुद्धिमान पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे।

\+ + + +

नीरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है और निर्वाण परम सुख है।

भारत में बौद्ध-धर्म का पुनरुद्धार

(लेखक श्रीरजनी कान्तदास पी० एच डी० भूतपूर्व अर्थ-सलाहकार नेशनल एकोनामिक वोर्ड, यूनाटेड स्टेट्स आर्मी कोरिया की सैनिक सरकार)।

भारत में इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि बौद्ध-धर्म की फिर से जागृति हो, क्योंकि यह वही धर्म है जो एक समय भारत का सर्वप्रधान धर्म था और आज भी सुदूरपूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रधान धर्म है। वह नैतिक और आध्यात्मिक मूल श्रोत जिससे बौद्ध-धर्म प्रवाहित हुआ था, आज भी भारत में विद्यमान है। बौद्ध-धर्म ने अन्य धर्मों से अधिक आत्म-ज्ञान और आत्म-निग्रह की महत्ता को जिसके ही द्वारा मनुष्य शान्ति और निश्चिन्तता प्राप्त कर सकता है, भली भाँति समझा है। आज भौतिकता की लहरों में डूबते उतराते मनुष्य को इन्हीं दो वस्तुओं की बड़ी ही आवश्यकता है। भारत की नवोदित सांस्कृतिक चेतना की नींव के लिए बौद्ध-धर्म की नैतिक और आध्यात्मिक सफलताएँ सबसे दृढ़ स्तम्भ सी हैं।

अब समय आ गया है कि भारत में बौद्ध-धर्म पुनर्जीवित किया जाय और इसको भारत के प्रधान धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय। बौद्ध-धर्म की ऐसी आवश्यकता के कई कारण हैं—

१—प्रचलित सनातन हिन्दूधर्म जो जाति-पांति वैवाहिक रीति-रिवाज़ निषिद्ध (गो-मांस आदि) ऐसे ही रीति रिवाज़ों और मूर्ति पूजा पर स्थिर पतनोन्मुख है। २—उन सिद्धान्तों या सम्प्रदायों की अनुपयुक्तता जो हिन्दू त्रिमूर्ति या पौराणिक आख्यान जैसे राम (रामायण के नायक) कृष्ण (महाभारत के नायक) ईश्वर के अवतार हैं आदि-में ही विश्वास करते हैं। ३—ईसाई या मुसलिम धर्मों की तुलना में हिन्दूधर्म में दूसरे धर्म के लोगों को ग्रहण करने की क्षमता का पूर्ण रूप से अभाव है। जिसका संकेत हिन्दुओं की दिन प्रतिदिन घटती संख्या से मिलता है।

बौद्ध-धर्म में आश्चर्य जनक नैतिक और आध्यात्मिक बल है। बौद्ध-धर्म की महत्ता और उत्तमता ने एक बार साधारण जनता को ही नहीं बल्कि विद्वानों राजा महाराजाओं विजेताओं को भी अपनी ओर आकर्षित किया था। बहुत दिन पहले ही बौद्ध-धर्म हमारी राजनीतिक सीमाओं को पारकर विदेशों में पहुंचा था। आज भी इसके अनुयायी संख्या में सबसे अधिक हैं। बौद्ध धर्म भारत के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान का एक विशेष अंश है। तथा इसकी शिक्षाओं में अभी भी भारत का सांस्कृतिक निवास है। अतः भारत को चाहिये कि आज हजारों वर्षों के उपरान्त पुनः उस अपने ही धर्म का स्वागत करें तथा धर्म गुरु के पद पर 'एशिया-प्रदीप' भगवान् बुद्ध को प्रतिष्ठित करें।

बौद्ध-धर्म का पुनरुद्धार एवं प्रसार भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों में होना चाहिए। प्रथम तो यह कि बौद्ध-धर्म के जो इस्लाम और इसाई धर्म की तरह ही अन्य धर्मावलम्बियों को

ग्रहण करता है उपदेश प्रत्येक श्रेणी के व्यक्तियों तक पहुँचाना चाहिए तथाकथित दलित वर्ग को बौद्ध बनाने का भी प्रयास होना चाहिए। दूसरी बात यह कि भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र तथा उनकी शिक्षाएँ भारत की प्रत्येक विश्वविद्यालयों कालेजों तथा स्कूलों के पाठ्य-क्रम का एक अंश होना चाहिए। प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी धर्म का अनुयायी क्यों न हो भगवान् बुद्ध के जीवन-चरित्र और उनकी शिक्षाओं का सामान्य ज्ञान कराया जाय। सुविधा जनक स्थलों पर बौद्ध बिहारों का निर्माण हो तथा बौद्ध साहित्य प्रत्येक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो।

भारत में एक बौद्ध-सम्मेलन (Buddhistic council) किया जाये। जो पांचवाँ सम्मेलन होगा। क्योंकि चौथा इसवी की प्रथम शताब्दी में ही हुआ था। अच्छा हो यह सम्मेलन सारनाथ में ही जहाँ बुद्धजी ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया था। आयोजित किया जाय। इस सम्मेलन में प्रत्येक बौद्ध-राष्ट्र लंका, बर्मा, श्याम, हिन्दचीन, तिब्बत, चीन, जापान और कोरिया आदि को प्रतिनिधि भेजने के लिए आमन्त्रित किया जाय। इसका कार्य-क्रम तीन मास से छः मास की अवधि का हो। वार्ता के विषय का कार्य-क्रम प्रत्येक बौद्ध-राष्ट्रों के प्रमुख व्यक्तियों से परामर्श करके तै कर लिया जाये। उस वार्ता में ऐसे विषयों का समावेष अवश्य हो—१—विभिन्न देशों में बौद्ध-धर्म की वर्तमान स्थिति २—आधुनिक विज्ञान, कला, दर्शन तथा मनुष्य की वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं से बौद्ध-धर्म की शिक्षा का सामञ्जस्य स्थापित करके उसका पुनर्जागरण ३—बौद्ध-राष्ट्रों के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना ४—प्रत्येक बौद्ध-राष्ट्रों में दो या तीन वर्षों के अनन्तर समयानुकूल बौद्ध-सम्मेलनों की व्यवस्था ५—तथा ऐसे अन्य विषय जो सम्मेलन निर्णय करे।

बौद्ध-धर्म के पुनरुद्धार का भारत तथा अन्य बौद्ध-राष्ट्रों पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ेगा।

प्रथम तो यह होगा कि भारत का नैतिक और सांस्कृतिक स्तर उच्चतर हो जायेगा और संसार के समक्ष वह ऊँचा उठा रहेगा। वास्तव में यह विचित्र विरोधाभास है कि उस देश के लोग जिन्होंने अद्वैतवाद, वेदान्त, बौद्ध-धर्म ऐसे उच्च सिद्धान्तों को जन्म दिया, वही आज मूर्तिपूजा के पीछे पड़े हों और अश्लील प्रतीकों को अपने धर्म का अंग मानें।

दूसरी बात यह होगी कि भारत उन सभी दक्षिण-पूर्व और सुदूर-पूर्व एशिया के देशों के सम्पर्क में आ जावेगा जिनके आर्थिक व्यवस्था की भित्तिमानसून है और जिनमें सांस्कृतिक एकता है। एक समय था जब भारत के बौद्ध तथा हिन्दू सम्राटों ने सुमात्रा और जावा के द्वीपों, उत्तर में फारमोसा और लुजान दक्षिण में वाली और लुम्बाक तक अपने राज्य का विस्तार किया था। आज भी हमें हिन्दचीन में प्राचीन भव्य हिन्दू-मन्दिरों तथा जावा में सुन्दर स्तूपों के दर्शन होते हैं। भारत इन देशों से

जहाँ पर बौद्ध-धर्म आज दस शताब्दियों से प्रचलित है—अपनी सांस्कृतिक सभ्यता को सम्पन्न कर सकता है।

तीसरी बात यह होगी कि भारत तथा इन देशों के निकट सम्पर्क से ऐसे बौद्ध-धर्म का पुनर्जागरण सरल हो जायेगा जिसका आधुनिक विज्ञान तथा दर्शन से पूर्ण सामञ्जस्य होगा और जो नये औद्योगिक सभ्यता का नैतिक तथा आध्यात्मिक आलम्ब होगा। जिससे पूर्व पश्चिम के अत्यधिक भौतिक दृष्टिकोणों से बच सकेगा। हो सकता है कि भारत तथा ऐसे देश औद्योगिक क्षेत्रों में एक अपना रहन-सहन तथा सांस्कृतिक स्तर स्थापित कर दें। अमेरिका तथा ऐशिया में अन्तराष्ट्रीय श्रमसंघ के तत्वाधान में प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों के उद्घाटनों से इसकी सम्भावना अधिक हो जाती है।

अन्त में भारत को चाहिए कि वह प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय कार्य-कलापों में हाथ बटाये तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापन में पूरा प्रयत्न करे। पुराने राष्ट्रसंघ (leogue-of Nations) की तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी शक्ति प्रधान देशों की राजनीति चल रही है। और अनेक गुट जैसे लौटंस अमेरिकन पश्चिमी-योरप गुट, अरब-मुसलिम गुट (पाकिस्तान से लेकर मिश्र तक) संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटेन और सोवियस यूनियन अपने अपने स्वार्थ साधन के लिए बन गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कई प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय विशेषतः एशिया सम्बन्धी समस्यायों को हल करने में भारत इन दक्षिण-पूर्व तथा सुदूर-पूर्व देशों का सहयोग प्राप्त कर सकेगा।

धर्मपाल

(मोहनचन्द्र त्रिवेदी बी० ए०)

जब जब धर्म का पतन होता है और अधर्म बढ़ने लगता है, अत्याचार अपने पराकाष्ठा को पहुंच जाते हैं ऐसे समय में किसी न किसी महान् पुरुष का प्रादुर्भाव होता है जो अत्याचार तथा अधर्म का नाश करके पुनः धर्म की स्थापना करता है। इस बात की पुष्टि भगवान् बुद्ध ने भी की है और इतिहास भी इस बात का साक्षी है।

जब लंका में अत्याचारों की हद हो गयी, डच या हालैण्ड निवासियों, पुर्तगालियों, अंग्रेजों ने लंका का शोषण ही नहीं किया प्रत्युत आर्य-धर्म, आर्य-संस्कृति, आर्य-सभ्यता को मिटा देने में और इसाईधर्म फैलाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी, तलवार और पैसे के जोर से लंका निवासियों का धर्म परिवर्तन किया गया, उन लोगों के नाम, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूसा सब ईसाईयत के ढाँचे में ढाल दिये गये, जो लोग अपने ही धर्म और अपनी सभ्यता में रहना चाहते थे उनको येन, केन, प्रकारेण नष्ट कर देने का प्रयास किया जाता था, लंका वासियों के लिये अपने धर्म में

रहना भी मृत्यु का आवाहन करना था, ऐसी परिस्थिति में विदेशियों के अत्याचारों के डर से लंका निवासी मजबूर होकर अपना धर्म परिवर्तन करने लगे और बौद्धधर्म की महत्ता कम होने लगी। जो लंका शताब्दियों से बौद्धधर्म का केन्द्र रहा है वही लंका विदेशियों के षड़यन्त्रों और कुचालों से "ईसाई राज्य" का रूप ले रहा था। बौद्धधर्म प्रायः लुप्त हुआ चाहता था कि महान् पुरुष देवमित्ता ने (अनागरिक) धर्मपाल का सन् १८६४ ई० में प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने अपने अदम्य उत्साह, सच्चरिता, धैर्य, तत्परता, दृढ़ता, अध्यवसाय से बौद्धधर्म को नष्ट होने से बचा लिया।

श्रीधर्मपाल का पहला नाम "डान डेविड" था और उनकी शिक्षा दीक्षा उस समय के अनुसार बिल्कुल इसाई ढंग से हुई। इन्होंने इसाई स्कूल और कालेज में शिक्षा पाई, बाइबिल का तन्मयता से अध्ययन किया लेकिन उनको इस अध्ययन में सत्य का आभास नहीं हुआ। उन्होंने पाली पढ़ना आरम्भ किया और बौद्धधर्म की सत्यता को शीघ्र ही समझ लिया। बौद्धधर्म के अध्ययन के बाद उन्होंने बौद्धधर्म के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया और इसी उद्देश्य से उन्होंने भगवान् बुद्ध की जन्म-भूमि भारत का भ्रमण किया। सबसे पहले वे बुद्धगया पहुंचे। बुद्धगया अत्यन्त हीनावस्था में था। सारनाथ की भी बुरी दशा थी।

धर्मपालजी को इन पवित्र स्थानों की दुर्दशा को देखकर अत्यन्त क्षोभ हुआ। जिन स्थानों का तथागत के जीवन से इतना गहरा सम्बन्ध रहा हो। उन स्थानों की दुर्दशा! अनागरिक ने इन स्थानों का पुनः निर्माण कराया और इसी के निमित्त महाबोधि सभा की स्थापना हुई। बुद्धगया, जहाँ पर भगवान् बुद्ध को सत्य का प्रदर्शन हुआ था, जहाँ पर उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था वही पुण्य भूमि एक शैव महन्त के अधिकारों में हो यह धर्मपालजी से न देखा गया। वह बुद्धगया और सारनाथ की दुर्दशा से इतने दुखी हो गये थे कि वह उनकी देख रेख स्वयं या बौद्ध धर्माव-म्बियों द्वारा करवाना चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि जितनी श्रद्धा और प्रेम बौद्धों को इन पवित्र स्थानों के प्रति हो सकता है उतना एक आरामतलब शैव महन्त को नही हो सकता। बौद्धगया मन्दिर को महन्त के पञ्जे से छुड़ाने के लिए उन्होंने मुकदमें बाजी की। लेकिन परिस्थिति अनुकूल न होने से बौद्ध मन्दिर को महन्त के हाथों से न छुड़ा सके और आज भी यह मन्दिर महन्त के अधिकार में है। इसके विषय में अनागरिक ने भारतवर्ष के महान् नेताओं से अपील की और उनकी अपील न्याय की अपील थी।

महात्मा गाँधी ने उनको इस मन्दिर के विषय में आश्वासन दे दिया था कि भारत के स्वतन्त्र होने पर इसके विषय में न्याय किया जायगा। भारत को स्वतन्त्र हुए आज एक वर्ष से ऊपर होता है लेकिन भारतीय बौद्ध समाज इस बात की प्रतीक्षा में है कि इस मन्दिर के विषय में कब न्याय होगा। जब कि भारत की राष्ट्र पताका में धर्म चक्र को स्थान दिया गया और भारत के राजकीय विभागों में जहाँ पर अंग्रेजी 'क्राँउन' का चिह्न था वहाँ पर धर्म चक्र का चिह्न रखा गया है, दूसरे शब्दों में भारत

के महान् नेताओं ने धर्म चक्र और बौद्धधर्म की महत्ता को समझा है और शायद वह यह बात भी सोचते हों कि बौद्धधर्म ही भारत में वर्णहीन समाज स्थापित करके भारत को एकता के सूत्रों में बाँध सकता है इसी लिए बौद्धधर्म का चिह्न भारत का राजकीय चिह्न हो गया है लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है नेताओं का ध्यान बौद्धधर्म के जन्म स्थान बुद्धगया की तरफ नहीं गया। नही तो कोई कारण नहीं कि बुद्धगया मन्दिर महन्त के शिकञ्जे से छुड़वाकर बौद्धों को समर्पित नहीं कर दिया जाता। अनागरिक धर्मपाल ने इस मन्दिर को छुड़वाने में कोई प्रयास बाकी न रक्खा। लेकिन वह विफल रहे।

धर्मपालजी ने सन् १८९३ ई० में "रीलिजन आफ़ पार्ल्यामेण्ट". में बौद्धधर्म के विषय में बड़े विवेक पूर्ण और ओजस्वी व्याख्यान दिया और पाश्चात्य लोगों के सामने बौद्धधर्म का दृष्टिकोण रक्खा। उन्होंने बहुत से लेख लिखे, व्याख्यान दिये और बौद्धधर्म के प्रचार के लिए सभायें स्थापित की जिसके कारण इनकी गणना अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त मनुष्यों में होने लगी। जो बौद्धधर्म प्रायः लुप्त हुआ चाहता था वह फिर संसार के सामने चमकने लगा।

इसके पश्चात् अनागरिक ने विदेशों का खूब भ्रमण किया और वे जहाँ भी गये लोग इनके विचारों तथा व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुये। ये पुरानी रूढ़ियाँ पुराने विचारों तथा अन्धविश्वास के विरोधी थे। ये धर्म के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना अत्यन्त आवश्यक समझते थे। बहुत से लोग जो पुराने विचारों और पुराने रूढ़ियों के पुजारी थे इनके शत्रु हो गये। लेकिन उन्होंने किसी की परवाह न की और अपने ध्येय की तरफ़ बड़ी निर्भयता से बढ़ते ही गये। कुछ कारणों से यहाँ की अभारतीय सरकार ने इनको कैद कर लिया और यह १९१४ से १९२० तक कलकत्ते में कैद रहे। कैद से छूटने पर फिर उन्होंने अदम्य उत्साह और तत्परता से कार्य करना आरम्भ कर दिया। इन्होंने बहुत से पत्रों का सम्पादन किया, बहुत से नवयुवकों को विज्ञान की शिक्षा के लिये विदेशों में भेजा, पुरानी रूढ़ियों का खण्डन किया और इस तरह से वह अपना कार्य बड़ी तत्परता से करते रहे। इन्होंने सारनाथ में सन् १९३१ ई० में मूलगन्ध कुटी विहार का निर्माण कराया एक बहुत ही उदार अंग्रेज धर्म पालजी के विचारों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने दस हजार रुपये विहार की चित्रकारी के लिये दान दिये। धर्मपालजी ने यहाँ पर मठों का निर्माण कराया। गया और कलकत्ते में भी विश्राम ग्रह और विहारों का निर्माण कराया। सारनाथ में बौद्ध भिक्षुकों का दीक्षा संस्कार का प्रबन्ध भी धर्मपालजी की प्रेरणा से ही हुआ। इसके पूर्व जो कोई भी भिक्षु होना चाहता था उसको बर्मा या लंका जाना पड़ता था। धर्मपालजी ने भारत में ही भिक्षु बनने की सुविधा प्रधान की। अनागरिक धर्म पाल के जीवन में कर्नल आलकाट और मैडम एच. पी. ब्लेभाट्स्की का काफी प्रभाव पड़ा है। लेकिन धर्म पालजी की सहायता सबसे अधिक श्रीमती मैरी फास्टर ने की। वह धर्म पालजी की विद्वता, आध्यात्मिकता और

विचारों से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने लाखों रुपया अनागरिक के महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिया। जिससे महाबोधि संस्था और बिहारों की स्थापना हो सकी।

धर्मपालजी ने सिर्फ योरप और अमेरिका वालों को ही प्रभावित नहीं किया प्रत्युत बहुत से भारतीय विद्वान् भी उनसे प्रभावित हुए। उन विद्वानों में सरमनमथ नाथ मुकर्जी का नाम अग्रगरणीय है और भी बहुत से प्रख्यात भारतीय उनसे प्रभावित थे। महात्मा गाँधी और धर्म पालजी में बहुत मित्रता थी। और इस तरह हर जाति, हर देश के लोगों से प्रेम और मित्रता स्थापित करते हुये वह अपने उद्देश्य की तरफ आगे बढ़ते गये जैसा पहले बता दिया गया है कि उनका उद्देश्य—बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान था। उन्होंने इसी कारण दूर दूर देशों की यात्रा की। होनोलुलु, जापान, चीन भी गये। इस संसार में बौद्ध धर्म की पताका फहराते हुये वह स्वदेश लौटे। सन् १९१२ में वह दुबारा फिर संसार के भ्रमणार्थ निकले। चीन और जापान में जाकर महायान सम्प्रदाय की बहुत सी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया। वह जहाँ भी जाते थे उनका अपूर्व स्वागत होता था। १९१४ ई० में वह कलकत्ता लौट आये और भारत में बुद्ध धर्म का पुनरुत्थान करने में व्यस्त हो गये। तब से बराबर वह भारत में धर्म प्रचार करते रहे। इसी बीच में उन्हें बहुत कष्ट भी हुए। उनको जेल भी जाना पड़ा। लेकिन उनका उत्साह कम नहीं हुआ। उनके उत्साह और दृढ़ता में उत्तरोत्तर बढ़ती होती गयी। लेकिन उनका शरीर शिथिल होने लगा। वर्ष व्यतीत होने लगे। अनागरिक का जीवन दीप टिमटिमाने लगा और सन् १९३३ में अनागरिक धर्म पाल ने अपना शरीर त्याग दिया। मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व उन्होंने कहा था "मुझे मृत्यु को प्राप्त होने दो, मैं फिर जन्म धारण करना चाहता हूँ। मैं अपने कष्टों को किसी प्रकार और ज्यादा नहीं झेल सकता मैं २५ बार जन्म धारण करना चाहता हूँ ताकि मैं बौद्ध धर्म का प्रचार कर सकूँ"। इन अन्तिम वाक्यों के साथ अनागरिक की जीवन ज्योति बुझ गयी। लेकिन उनके विचार मठों, बिहारों, धर्मशालाओं, स्कूलों तथा अस्पतालों के रूप में जीवित हैं और रहेंगे।

———

"अतीत भारत में बौद्ध धर्म"

(श्रीमोहनचन्द्र त्रिवेदी बी० ए)

भारतवर्ष अतीत में महान् था। दूसरे देश इसको अपना गुरु समझते थे। यहाँ पर चीन, यूनान, मिश्र, और फारस के लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे। कहते हैं प्लाटिनेष ने उपनिषदों से ज्ञान प्राप्त किया और वह उपनिषदों की शिक्षाओं और तर्क से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उपनिषदों के विचारों को सन्त अगस्टाइन तक पहुँचाये।

भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का बहुत कुछ भाग उपनिषदों से मिलता है। भगवान् बुद्ध आर्य सभ्यता, आर्य संस्कृति, आर्य धर्म और आर्य विचार धारा के सबसे महान् उपज थे। आज भारत में बौद्धधर्म को एक विदेशी धर्म माना जाता है और भगवान् बुद्ध जो भारत के सबसे महान् शिक्षक थे उनको भी लोग विदेशी समझने लगे हैं।

भगवान् बुद्ध के ही कारण संसार के अधिकांश देश आज भी भारत के सामने नतमस्तक होते हैं। चीन, जापान लंका, तिब्बत बर्मा इत्यादि के लोग आज भी भारत को एक पुण्य भूमि या तीर्थ के रूप में देखते हैं, क्योंकि यहाँ पर भगवान् बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत में बड़े बड़े चीनी विद्वान भारत में आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। फाहियान ह्वेनसांग ने बड़े बड़े पहाड़ों, रेगिस्तानों और कष्टों को झेलते हुये भारत में पहुँच कर धर्मलाभ किया। उन्होंने बौद्धधर्म और ज्ञान सम्बन्धी बातों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और यहाँ से बहुत से विद्वान बौद्ध धर्म की शिक्षा देने के लिये चीन गये। एक चीनी सम्राट् भारत से भेजे हुये बौद्ध भिक्षु का शिष्य हो गया और इस तरह बड़े बड़े राजवन्शी लोग भी भारत के विद्वानों के शिष्य हुये और उनसे शिक्षा ग्रहण की। कहना न होगा कि वह दीक्षा बौद्ध-धर्म की दीक्षा थी। जिस समय सारा संसार बर्बर और असभ्य था भारत ने भगवान् बुद्ध का जन्म देकर संसार का एक महान् कल्याण किया। भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से संसार सभ्य और संस्कृतिशील होना शुरू हुआ। बुद्ध धर्म का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। भारत में एक से एक महान् सम्राट् हुये जिन्होंने बौद्धधर्म की शिक्षा को ग्रहण कर संसार के सामने सभ्यता, महान्ता की मिसाल खड़ी कर दी। सम्राट् अशोक भारत की सभ्यता के उच्चतम् प्रतीक है। उन्हीं ने भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को कार्य रूप में परिणत करके दिखला दिया कि मानव सहानुभूति केवल मानव तक सीमित नहीं है बल्कि सभी जीव जन्तु तक फैली हुई है। सम्राट् अशोक के बाद भी भी बहुत से महान् सम्राट् हुये और जबतक लोग भगवान् बुद्ध के आदेशों को ग्रहण किये रहे भारत महान् रहा लेकिन कालान्तर में भारत अपने महान् शिक्षकों के उपदेशों को भूलने लगा और उसका परिणाम यह हुआ कि भारत की उन्नति रुक गई।

भगवन् बुद्ध ने ऊँच नीच, छूआ-छूत के भेद को हटाकर भारत में एक वर्ग हीन

(शेष देखिये पृष्ठ ६६ पर)

दस पारमिताए

(अनगारिक प्रियदर्शी सुगतानन्द)

पूर्णता की ओर करनेवाली अपनी लम्बी यात्रा में बोधिसत्व असंख्य प्राणियों को अविद्या से मुक्त करने के लिए अपने आप को समर्पित करते हैं। सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर असहाय प्राणियों को संसार सागर से पार करने का भार वे अपने ऊपर लेते हैं।

जीवन्मुक्त तीन प्रकार के होते हैं। सम्यक्-सम्बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध तथा अर्हन्त। जो परम सत्य को स्वयं जान कर दूसरों को सत्य-बोध का मार्ग बता सकते हैं वे सम्यक-सम्बुद्ध हैं। जो अपने प्रयत्न से सत्य को जान लेते लेकिन दूसरों को समझा नहीं सकते वे प्रत्यक-बुद्ध हैं। जो सम्यक् सम्बुद्ध के दिखाये मार्ग पर चलकर सत्य को जान लेते हैं वे अर्हन्त हैं। इस प्रकार अनुसासनी पारिहारिय अर्थात् साक्षात् कृत सत्य दूसरों को समझाने की शक्ति केवल सम्यक् सम्बुद्धों में है।

बुद्ध ने न केवल शब्दों द्वारा अपितु जन्म जन्मान्तरों में विकसित मानसिक शक्तियों द्वारा भी सिखाया। इन शक्तियों द्वारा उन्हों ने मोह निद्रा में पड़े हुए को जगाया। उनका दर्शन पाना सत्य का दर्शन पाना था; क्योंकि वे सत्य स्वरूप थे। भगवान् ने कहा भी है, "जो मुझ को देखता है वह धर्म को देखता, जो धर्म को देखता है वह मुझ को देखता है।"

भगवान् बुद्ध थोड़े शब्दों में अपने पास आने वालों के ज्ञान चक्षु खोल देते थे। जहां साधारण मनुष्य अनेकों बारीक तर्क वितर्क पेश कर भी हार जाते थे—जैसा कि प्रायः हुआ करता है—वहां वे आसानी से विजय प्राप्त करते थे। उनके अनुसार सत्य गवेषक में दो बातों की आवश्यकता है। धर्म को सुनने की अभिलाषा तथा उससे लाभ उठाने की कर्म शक्ति। शुष्क दार्शनिक उलझनों में पड़े बिना सीधी बातचीत से या एक छोटी उपमा से वे सैकड़ों लोगों को शान्ति प्रदान करते थे।

पारमिताओं का अभ्यास—दस परमिताओं के अभ्यास से ही सम्यक् सम्बुद्ध प्राणियों को शान्ति प्रदान करने की यह शक्ति प्राप्त करते हैं। अनेक जन्मों के अभ्यास से वे स्वयं पूर्णता को प्राप्त हो दूसरों को भी पूर्ण रूप से विकसित होने का मार्ग बता देते हैं। सर्व प्रथम वे दान का अभ्यास करने का संकल्प कर लेते हैं। इसके द्वारा वे अपनत्व के विचार से मुक्त हो जाते हैं। वे दूसरों की आवश्यकता को अपनी आवश्यकता समझते हैं और उसके लिए वे न केवल अपनी सम्पत्ति अपितु अपने जीवन तक को अर्पण करने को तैयार रहते हैं। व्यग्घ जातक के अनुसार बोधिसत्व ने एक भूखी भामिन को, जो कि अपने बच्चों को हड़पने को तैयार थी, अपना जीवन दान किया। वे यह प्रश्न नहीं करते कि मुझे या मानव समाज को इस प्राणि की उपयोगिता है कि नहीं? ऐसी भिन्नता केवल अविद्या के क्षेत्र में हो सकती है। जहां प्रज्ञा तथा करुणा है वहां जीवन एक है। बोधिसत्व व्यक्तिगत इच्छा या अनिच्छा के अनुसार किसी निर्णय पर नहीं पहुँचते। उनके लिए सब कुछ दुःख है और सभी प्राणि उसी में पड़े हैं। इसलिए वे उन्हें दुःख-मुक्त करने का भार अपने ऊपर लेते हैं।

दान का सम्बन्ध केवल वस्तुओं से नहीं अपितु चेतना से भी है। और सब बातों की तरह दान भी मन से ही आरम्भ होता है। वह दान चेतना रूपी उपजाऊ भूमि से ऊग कर प्रफुल्लित हो जाता है। सन्त पोल ने लिखा है कि यद्यपि मैं अपने शरीर को अर्पण कर दूँ फिर भी मैं दानी नहीं हूँ; क्योंकि मैं बजने वाले पीतल की तरह तुच्छ हूँ। सन्त पोल की इस उक्ति का तात्पर्य यह है कि जहां दान का सम्बन्ध चेतना से नहीं है वहां वह केवल अभिमान का कारण बन जाता है। दान-चेतना वह करुणा है जो कि प्रत्येक शब्द और कर्म को सहानुभूति से भर देता है। जिसमें सच्ची सहानुभूति है उसके मुँह से न तो कटुवचन निकलते हैं और न उसके हृदय में कटु चेतनाएँ उत्पन्न होती हैं। अपनी चेतनाओं को सँभालते हुए बोधिसत्व नित्य प्रति इस आदर्श की ओर बढ़ते हैं और अन्तमें वे उस स्तर पर पहुंच जाते हैं जो कि अहंभाव के परे हैं।

प्रज्ञा की आधार शिला

दूसरी पारमिता शील है। इसके बिना और सब कुछ बेकार हो जाते हैं। यह प्रज्ञा की आधार शिला है, क्योंकि दूषित मन से उस महान विजय को प्राप्त नहीं कर सकते। कुछ लोग सिद्धियों का दुरुपयोग करते हैं और उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। वे केवल आत्मघात के लिए एक रास्ता प्राप्त करते हैं। जिनमें दृढ़ संकल्प है वे सभी सिद्धियों को प्राप्त कर सकते हैं। उनके दुरुपयोग से नैतिक पतन होता है। इसलिए भगवान् बुद्ध ने समाधियों से प्राप्त सिद्धियों के उपयोग के विषय में अपने शिष्यों को सचेत किया था। उनका उपयोग केवल औरों के कल्याणार्थ किया जा सकता था और वह भी अत्यावश्यकता पड़ने पर। शील का पालन पांच शील से, जो साधारण गृहस्थ के लिए है, आरम्भ होता है। वे हैं जीव हिंसा से विरत रहना, चोरी से विरत रहना, व्यभिचार से विरत रहना, असत्य से विरत रहना और मद्य से विरत रहना। इससे उच्च जीवन व्यतीत करने वालों के लिए और भी नियम हैं। ये नियम बाहरी जीवन तक सीमित नहीं होते अपितु अन्तस्थल तक चले जाते हैं। बौद्ध-धर्म में भाव की ही प्रधानता है और बाहरी रूप का उतना मूल्य नहीं है। एक तरुण भिक्षु को, जो कि नियमों की संख्या से घबरा कर चीवर छोड़ना चाहते थे, भगवान् ने कहा, "क्या तुम केवल तीन नियमों का पालन कर सकते हो?" जब भिक्षु ने यह स्वीकार किया तो भगवान् ने कहा, "मन, वचन, तथा कर्म की पवित्रता रखो।" यही सब कुछ है।

तीसरी पारमिता निष्कामता है। बोधिसत्व उच्च आदर्श के लिए स्वार्थ को छोड़ देते हैं। वे धन, शक्ति, सम्मान तथा काम की आकांक्षाओं से मुक्त हो कर पूर्ण रूप से निष्कामता को प्राप्त होते हैं। जो लोभ आसक्ति के जाल में फँसे हैं उन्हें वे अपनी शरण में लेते हैं। वे स्वयं मुक्त हो कर तृष्णा के वशीभूत अन्य प्राणियों पर अनुकम्पा करते हैं और उनके कल्याण के लिए अपने सर्वस्व को त्याग देते हैं। सत् कर्मों से जो फल प्राप्त होते हैं उन्हें वे दूसरों की सेवा में अर्पण कर देते हैं। यह निष्कामता की पराकाष्ठा है।

चौथी पारमिता प्रज्ञा है। बोधिसत्व प्रज्ञा की प्राप्ति के लिए भी प्रयत्न करते हैं वे सांसारिक प्रलोभनों से विचलित नहीं होते क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि संस्कृत

वस्तुएँ अनित्य हैं दुःख मय हैं और असार हैं। इन बातों पर मनन करके वे संसार के असली स्वभाव को समझ जाते हैं। जहां और लोग स्वप्न देखते हैं ये असली तत्व को देखते हैं, जहां और लोग छाया को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं वे सार को ग्रहण करते हैं। जब दुःख, दुःख का समुदय और दुःख के विरोध को जान लेते हैं तब वे समझ जाते हैं कि आर्य आष्टांगिक मार्ग ही दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

बाधाएं और शत्रु

पांचवीं पारमिता वीर्य अर्थात् प्रयत्न है। प्रयत्न के बिना कोई पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता। यही उसके लिए एक मार्ग है जिसे धीरज के साथ तै करना है। अन्दर और बाहर बहुत सी बाधाएं हैं और अप्रमाद से ही उनपर विजय प्राप्त की जा सकती है। अन्दर और बाहर बहुत से शत्रु हैं जिनका सामना अप्रमाद रूपी तीक्ष्ण शस्त्र से करना है। बुद्धों का मार्ग विजय मार्ग है। धम्मपद में आया है, "संग्राम में हजारों शत्रुओं की विजय की अपेक्षा आत्मविजय ही श्रेष्ठ है।"

छठीं पारमिता क्षान्ति अर्थात् सहनशीलता है। यह अन्त तक सभी बातों को सहने की शक्ति है। जो मनुष्य सांसारिक कामनाओं को तुच्छ समझते हैं उन्हें हजारों परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। राग, द्वेष तथा मोह के वशीभूत होकर लोग जो अत्याचार करते हैं वे बिना विरोधभाव के उन्हे सह लेते हैं। यद्यपि बहुत से लोग उन्हें शत्रु बताते हैं तथापि वे किसी को अपना शत्रु नहीं समझते। वे शान्ति की मूर्ति है और वे लोग उनके लिए अबोध बच्चे हैं। अनुकंम्पा पूर्वक वे उनको सन्मार्ग पर ले जाते हैं। शत्रुता के बदले वे दया दिखाते हैं; क्योंकि उनके हृदय में गर्व या असहिष्णुता के लिए कहीं स्थान नहीं है यद्यपि उनको अपने लक्ष्य तक पहुंचने के पहले बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथापि वे सहिष्णुता से सज्जित हो धीरज के साथ आगे बढ़ते हैं।

सातवीं पारमिता सत्य है। सत्य के बिना प्रज्ञा का उदय नहीं होता। हाँ, सत्य का तात्पर्य केवल चौथे नियम (असत्य से बिरत रहना) का पालन नहीं है अपितु मन, वचन तथा कर्म से पूरी सच्चाई का पालन करना है। इसके लिए निर्भीक आत्मज्ञान की आवश्यकता है जिसमें कि कुछ भी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि से छिप न सके। बोधिसत्व न तो दूसरे को धोखा देता है और न अपने को ही। वे सतत् आत्मपरीक्षा का अभ्यास करते हैं जो जि बौद्ध मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जहाँ वे दूसरों से उनके स्वभाव से अधिक अपेक्षा नहीं करते वहाँ वे अपने अन्तस्थल तक पहुँच जाते हैं और अपने गुप्तमय विचारों का विश्लेषण करते हैं। जैसे डाक्टर बिना किसी भावुकता के फोड़े को चीरकर विष बाहर कर देता है वैसे हीं वे अपने गुप्त विचारों का विश्लेषण कर उनकी विषमता को निकाल देते हैं।

मानसिक बल

आठवीं पारमिता संकल्प है। संकल्प से दृढ़ हो बिना किसी हिचकिचाहट के बोधिसत्व अपने मार्ग पर अग्रसर होते हैं। अपने मन को दृढ़ बनाकर वे अपनी दृष्टि को लक्ष्य पर रखते हैं और लक्ष्य तथा अपने बीच किसी रुकावट को आने नहीं देते। बोधिवृक्ष के

नीचे बुद्धत्व प्राप्ति के प्रथम सिद्धार्थ गौतम ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया, 'चाहे मेरा शरीर सूख जाय चाहे मेरा मांस हुड्डियों से अलग हो जाय सम्बोधि की प्राप्ति के बिना इस आसन से उठूंगा नहीं।" मानसिक शक्ति इतनी प्रबल है कि वह सारे संसार का पर विजय प्राप्तिकर सकती है। संसार का उत्पत्तिस्थान मन है और उसका विरोध भी मन में ही होता है। भगवान् ने कहा है, "विज्ञान सहित दो हाथ के इस शरीर में संसार विद्यमान है, संसार की उत्पत्ति तथा विरोध भी इसी में है।" ये भावपूर्ण गम्भीर शब्द हैं। जो इस सत्य से अवगत होता है वह अपना स्वामी आप बन जाता है और वह दृढ़संकल्प से इस पृथ्वी को स्वर्ग बना सकता है।

नवीं पारमिता मैत्री है। यह प्राणिमात्र के प्रति दया तथा सहानुभूति का अभ्यास करना है। जिसमें यह भाव नहीं है वह अपनी चारों ओर के जीवन से अलग हो अपने क्षुद्र स्वार्थ रूपी बन्धन में पड़ा रहता है। यदि वह इस बन्धन को तोड़ नहीं डालता तो अन्त में अहंकार उसे हड़प जाता है। करुणा की भावना द्वारा इस बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। जिसमें मैत्री नहीं है वह अपने को दूसरों के दुःख के बीच कल्पना करे तभी वह धम्मपद के इस उपदेश को समझेगा।

"सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को जीवनप्रिय है (इसलिए) अपने समान (दूसरों को भी) जानकर न मारे और न मारने की प्रेरणा करे।" इस सत्य को जानकर वह सभी जीवों को एक समान समझने लगता है।

दसवीं पारमिता उपेक्षा है। यह युनानी स्टोइकों की उपेक्षा नहीं है जो संसार से घृणा करते थे और दूसरों के दुःख की ओर से उदासीन रहते थे। भौतिक पदार्थों की ओर से उदासीन रहने से भी यह भाव नहीं आ जाता। जैसे कि आत्मलिप्सा से इसका उदय नहीं होता वैसे आत्मपीड़ा से भी नहीं। जो तपस्वी उपेक्षा की प्राप्ति के लिए अपने शरीर को कष्ट देता है वह अपने आप को धोखा देता है क्योंकि मनोविज्ञान की भाषा में वह एक इच्छा को उसकी विपरीत इच्छा से दबाने की कोशिश करता है। वह एक इच्छा की जगह पर दूसरी इच्छा का उत्पादन करके केवल तृष्णा की धारा की दिशा को बदल देता है। उपेक्षा मन का वह भाव है जो कि इस द्वन्दात्मक जीवन की सभी स्थितियों को स्वीकार करने को तैयार है। द्वन्दात्मक संसार के परे उनका कोई तत्त्व नहीं है। किसी द्वन्द का एक पहलू जहाँ नहीं है दूसरा भी वहाँ उपलब्ध नहीं। इसलिए वे (बोधिसत्व) इन्द्रिय जन्य इन अनुभवों की ओर से उपेक्षित रहते हैं। इससे निष्कामता आ जाती है। जिनमें यह भाव है वे अनुरोध और विरोध से परे हो जाते हैं। वे न तो कामनाओं के पीछे पड़ते हैं और न उन से भागते हैं, क्योंकि वे सभी स्थितियों को एक ही दृष्टि से देखते हैं और उनकी मित्रता उनके लिए अर्थहीन हो जाती है।

यही बोधिसत्व का आदर्शमय जीवन है। बुद्ध ने पूर्व जन्मों में इन पारमिताओं का अभ्यास किया था। मानव जाति के सामने यही सबसे उत्तम आदर्श है।

आचार्य धर्मानन्द कौसाम्बी—सच्चे राष्ट्रसेवी और प्रसिद्ध पाली विद्वान्

प्रोफेसर पी० वी बापत

श्रद्धेय कौसाम्बीजी का जन्म ६ अक्टूबर सन् १८७६ ई० को ससस्त जिले के अन्तर्गत सखवल नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान पुर्त्तगाली प्रदेश गोआ में है। ये अपने पाँच बहिनों और दो भाइयों में सबसे छोटे थे। अपने गाँव और पास पड़ोस की प्रायमरी शिक्षा के अतिरिक्त इन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का साधन व अवसर न मिला। अतएव अपने ही स्थान में मराठी पुस्तकावलोकन तथा स्वयं अर्जित विद्या का ही आश्रय इन्हें मिला। १७ वीं शदी के प्रसिद्ध मराठी संत तुकाराम के जीवन तथा उनकी गाथाओं का प्रभाव इनके जीवन पर व्यापक रूपसे पड़ा। इसके अतिरिक्त एक तत्कालीन मराठी पत्रिका में प्रकाशित भगवान् बुद्ध पर एक लेख (सन् १८६७ में प्रकाशित) ने इन्हें इतना आकर्षित किया कि इसके पश्चात् तो बौद्ध धर्म के प्रति इनकी आस्था तीव्रतर होती गई और यही भावना उनके भावी उत्कर्ष की वाहक बन गई।

इन्होंने अपनी भावी शिक्षा निमित्त बाहर जाने के कई प्रयत्न किए, किन्तु निष्फल रहे। अन्ततोगत्वा इस संकल्प को लेकर कि अब असफल होकर नहीं लौटना है और अपने अज्ञानतामय जीवन से ऊबकर ये दिसम्बर सन् १८६६ में घर छोड़कर चल पड़े। इनकी एकमात्र यही इच्छा थी कि किसी उपयुक्त स्थानपर संस्कृत के अध्ययन का अवसर प्राप्त हो। इसके बिना बौद्धधर्म तथा दर्शन का ज्ञान अधूरा समझकर वे पूना पहुँचे। वहाँ के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् सर रामकृष्ण भंडारकर से मिले। उनके प्रोत्साहन और प्रेरणा से उन्होंने संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। किन्तु उतने से विशेष सन्तोष न पाकर वे संस्कृत के प्रधान तीर्थ काशी को चल दिए। यहाँ उन्हें वेद शास्त्र सम्पन्न गंगाधर शास्त्री तैलंग के परमपट्ठ शिष्य महाराष्ट्री पंडितप्रवर नागेश्वर पंत धर्माधिकारी के पास संस्कृत पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यहाँ कौमुदी का अध्ययन किया। जीविकोपार्जन की कठिनाई तो थी ही—किसी प्रकार महाराज ग्वालियर द्वारा संचालित एक अन्न क्षेत्र में एक बार भोजन की व्यवस्था प्राप्त की और उसी से कालयापन किया। बुद्ध धर्म के प्रति उनके अगाध प्रेम ने उन्हें नैपाल-यात्रा के लिए प्रेरित किया। यह यात्रा उन्होंने अपने एक सहपाठी के साथ संयोजित की जो नैपाल के वासी थे। वे सन् १६०२ की २ फरवरी को अपने सहपाठी श्रीदुर्गानाथजी के साथ काशी से चले। मार्ग की कठिनाइयों को झेलते झेलते काठमाण्डू पहुँचे। १० दिन वहाँ ठहरे। वहाँ उन्होंने देखा कि बौद्धधर्म का सच्चा उपदेश देनेवाला तथा समझने बूझनेवाला एक भी पंडित या साधु न था जो वास्तविक बौद्धधर्म का अनुयायी हो।

अतएव निराश हो वे बोधिगया पहुँचे। यहाँ उन्हें एक भिक्षु के दर्शन हुए, जिन्होंने इनका ध्यान पाली ग्रन्थों की ओर आकर्षित किया और बताया कि इन ग्रन्थों का अध्ययन लंका में भली-भाँति किया जा सकता है। अब वे कलकत्ता पहुँचे और वहाँ से महाबोधि सोसाइटी के कुछ मित्रों की सहायता से मार्च सन् १६०२ में कोलम्बो को चल दिए।

कोलम्बोमें श्रीसुमंगलाचार्य की देखरेखमें विद्योदय कालेजमें इन्होंने पालीका अध्ययन किया। इनके गुरुजन इनकी उत्कट इच्छा और लगन के बड़े प्रशंसक थे। इनके संस्कृत ज्ञान का प्रभाव लंकावासियों पर बहुत अच्छा पड़ा। इन्होंने १० माह पाली पढ़ी, इसी बीच श्रामणेर हो जाने के कारण इनकी घनिष्ठता बौद्ध विहारों के भिक्षुओं और पंडितों से अधिक बढ़ी। इससे इन्हें पाली साहित्यके अध्ययनका अधिक सुअवसर प्राप्त हुआ। यहीं से इन्होंने अंग्रेजी का अध्ययन भी प्रारम्भ किया। किन्तु लंका का भोजन इनकी रुचि के अनुकूल न पड़ा, अतः लंका से भारत को प्रस्थान करना पड़ा। इस समय इच्छा यह थी कि भारत में किसी शान्त और एकान्त स्थान में सुस्थिर हो ध्यान का अभ्यास किया जाय, किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई द्रव्य की थी। उस समय इतना भी पैसा न था कि वे कुशीनगर जैसे स्थान तक भी पहुँच पाते, जहाँ भगवान् बुद्ध ने इहलोक लीला समाप्त की थी। जितना भी उनके पास द्रव्य था, उससे वे मद्रास तक पहुंच सके। कुछ मासतक वे वहाँ ठहरे—वहाँ एक बुद्धाश्रम था जहाँ बौद्धधर्म के प्रेमीजन कभी कभी एकत्रित हो जाया करते थे। यहीं इनका परिचय प्रोफेसर नरसू से हुआ, जिन्होंने इनका ध्यान तुलनात्मक अध्ययन की ओर मोड़ा। अंग्रेजी का भी कुछ अध्ययन चलता रहा। उत्तरी भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा पूर्ण करने का संकल्प प्रबल था, किन्तु उसके लिए पैसा न था। मद्रास में ही उनका परिचय कुछ बर्मी विद्यार्थियों से हुआ, जो उन्हें अपने पैसे से बर्मा ले जाने को उत्सुक थे। ऐसा ही हुआ। बर्मा में पाली की विद्वत्ता ने उन्हें विख्यात कर दिया। वे अब भिक्षु थे। वहाँ उन्होंने 'विशुद्ध मग्गो' का अध्ययन किया। बर्मा में रहते हुए इनका परिचय एक जर्मन संगीतज्ञ से हुआ जो आगे चलकर 'न्याणया तिलोक' के नाम से बौद्ध भिक्षु हुए और जो अब एक विख्यात पाली के विद्वान् हो गए हैं तथा लंका में रहते हैं। यहाँ भी भोजन की कठिनाई इनके सम्मुख थी। इनका शरीर यहाँ का भोजन अपने अनुकूल न बना सका और इन्हें बर्मा छोड़ना पड़ा—यद्यपि इनके आध्यात्मिक गुरु की यह इच्छा न थी। उनके कथनानुसार बर्मा में किसी नव भिक्षु को कम से कम पांच वर्ष तक अपने गुरु के पास रहना चाहिए। किन्तु ये ऐसा न कर सके और सन् १६०४ में भारत लौटे। दो वर्ष तक ये भारत में भ्रमण करते रहे। अधिकांश यह भ्रमण पैदल ही किया और भिक्षावृत्ति ही भोजन-व्यवस्था रही। सारे बौद्ध तीर्थों के भ्रमण का संकल्प अभी भी शेष था और इसी समय वे यह भी चाहते थे कि कहीं बैठकर ध्यान के सभी अभ्यासों का प्रयोग करें जिनका विशद वर्णन बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। उन्होंने कलकत्ते से बम्बई तक की

यात्रा की—इसके पश्चात् उत्तरी भारत में उज्जैन, ग्वालियर, सारनाथ, कुशीनगर आदि स्थानों में वृक्षों के नीचे, खंडहरों में इन्होंने ध्यान का अभ्यास प्रारम्भ किया। कभी मानवों में, कभी स्यार, भेड़िया, चीते, भूत प्रेत आदि के साथ प्रेम-प्रसार कर ध्यान और एकाग्रता में अपना चित्त लगाया। इस काल में उन्होंने कितनी ही आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त कीं। इसके पश्चात् वे श्रावस्ती आजकल सहेत-महेत पहुँचे, जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन के कितने ही वर्ष बिताए थे। पुनः वे श्रद्धेय धर्मपाल (जिनसे वे पहिले लंका में भेंट कर चुके थे) से काशी में मिले। यहाँ से वे बुद्धगया गये। यहाँ उन्होंने नैरंजना नदी के किनारे कितने ही दिन ध्यान और एकान्त में बिताए। यहीं से वे राजगृह गये। एक बर्मी भिक्षु की सहायता से वे पुनः बर्मा गये। यहाँ वे सेगांव के एकांत पर्वतों में रहना चाहते थे। यहाँ उनसे 'नाणया तिलोक' से पुनः भेंट हुई। यहाँ वे उनके साथ यू राजेन्द्र के बिहारमें रहे। यहाँ वे उन महिलाओं के लिए भी जिन्होंने घर बार छोड़ दिया था भिक्षा मंगवाया करते थे। इन महिलाओं में से एक बर्मा की उच्चकुलीन महिला थीं जो त्रिपिटक में विशेष रूप से 'अभिधर्म' की पंडिताथीं। इस विषय में उनकी यहाँ कोई तुलना न थी। यहाँ एक बर्मी भिक्षु की सहायता से उन्होंने तीन माह तक ध्यान योग का अभ्यास किया। मार्च सन् १९०५ में भोजनादि की कठिनाई के कारण वे दूसरे बिहार में गए, जहाँ दो सप्ताह तक ठहरे। पश्चात् वे मांडले गए और वहाँ यू तिलोक के बिहार में निवास किया। किन्तु यहाँ भी गर्मी के भीषण ताप के कारण अधिक दिन न ठहर सके और मुलेमिन गए जहाँ के धनी व्यापारी अपार धनराशि बौद्ध भिक्षुओं पर व्यय करते थे। यहाँ उन्होंने पन्नासामी नामक भिक्षु को संस्कृत व्याकरण सिखाया, जिन्होंने परिबर्तन में इन्हें अभिधर्मरथसंग्रह' पढ़ाया। उनकी पुरानी कठिनाई यहाँ भी थी कि यहाँ का भोजन उनके शरीर के अनुकूल न पड़ता था—इसी बीच उन्होंने वीलाउ-जावर नामक स्थान का परिवर्त्तन किया, किन्तु यहाँ भी कोई विशेष लाभ न हुआ। अब उन्होंने बर्मा को छोड़ने का पक्का विचार कर लिया और भारत में साधारण जन की भाँति कालयापन करने का संकल्प किया, क्योंकि वे समझते थे कि भारत में विशुद्ध बौद्ध भिक्षु बनकर रहना अत्यन्त दुष्कर है। उनके गुरु ने भी उन्हें ऐसी ही सम्मति दी कि बे भारत जाकर ही अपने को साधारण जन में परिवर्तित करें बर्मा में नहीं। अतएव जनवरी सन् १९०६ में वे रंगून से कलकत्ता वापिस आए।

कलकत्ता में उनका परिचय प्रेसीडेन्सी कालेज के प्रोफेसर हरनाथ डे से हुआ, जो कलकत्ता यूनीवर्सिटी से पाली में एम० ए० की परीक्षा देने की तैयारी में थे। वे अपने कोर्स के एक ग्रंथ अभिधर्म पीठिका के धम्मसंगिनी की टीका 'अथ्थसालिनी' नामक ग्रन्थ का अध्ययन किसी योग्य पंडित से करना चाहते थे। इसी समय कौसाम्बी जी नेशनल कालेज कलकत्ता में पाली के अध्ययन कार्य में प्रवृत्त हुए। इसके पशात् प्रोफेसर डे के प्रयत्न तथा न्यायधीश मुखर्जी की सहायता से कलकत्ता यूनीवर्सिटी में पाली के लेक्चरर नियुक्त हुए। इस कार्य में इन्हें आत्मसन्तोष न हुआ, क्योंकि विद्यार्थियों में पाली के लिए कोई विशेष अभिरुचि न थी। वे केवल परीक्षा के निमित्त ही पाली का

अध्ययन करते थे। इस नैराश्य तथा एक परमप्रिय शिष्य के व्यक्तिगत व्यवहार के कारण उन्हें इतना आन्तरिक क्लेश हुआ कि कौसाम्बी जी ने कलकत्ता छोड़ने का निश्चय कर लिया। इसी समय बड़ौदा के महाराज के द्वारा एक निमंत्रण मिला कि वे महाराष्ट्र में बैठकर प्रतिवर्ष एक ग्रथ की रचना करें। किन्तु इस समय वे पुनः कलकत्ते से बर्मा गए, जहाँ उनको माननीय मॉन्ग वा तू—जिनका परिचय कलकत्ते में ही प्राप्त हुआ था—द्वारा पाली ग्रंथों का बर्मी लिपि में एक सेट (समूह) भेंट किया गया। वे अपने गुरु जी के पास मुलमीन भी गए जहाँ उनका विशेष रूप से सत्कार हुआ।

बर्मा से लौटकर कौसाम्बी जी शीघ्र ही बम्बई गए जहाँ वे डाक्टर वी० ए० सुखथनकर से मिले। इन्हीं के द्वारा कौसाम्बी जी का परिचय प्रोफेसर डा० जे० एच० वुड (हरवार्ड यूनीवर्सिटी अमेरिका) से हुआ। इस घटना ने इनके जीवन की दिशा को एकाएक परिवर्तित कर दिया। प्रोफेसर वुड बम्बई के ताजमहल होटेल से नित्य पाली पढ़ने इनके पास आया करते थे। यह क्रम कुछ दिनों तक रहा। इन्हीं डा० वुड ने अमेरिका जाकर संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर लनमन से कौसाम्बीजी के पालि-पाण्डित्य के विषय में चर्चा की। प्रोफेसर लनमन उस समय विसुद्धि मग्गो नामक ग्रन्थ के विषय में कार्य कर रहे थे, जिसको भूतपूर्व मिस्टर वारेन छोड़ गए थे; उन्हें एक ऐसे पाली पण्डित की आवश्यकता थी, जो उन्हें इस कार्य के सम्पादन में सहयोग दे। इस प्रकार सन् १९१० में प्रोफेसर वुड ने प्रोफेसर लनमन की ओर से हारवर्ड यूनीवर्सिटी में कौसाम्बी जी को आमन्त्रित किया। अतएव इनके जाने की तैयारी हुई और ये इंगलैंड होकर अमेरिक पहुँचे तथा वहाँ पहुँच कर प्रोफेसर लनमन के साथ कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों तक प्रोफेसर लनमन को उनकी सहायता का मूल्य न जंचा, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अनुभव किया कि कौसाम्बीजी का सहयोग एक अमूल्य वस्तु है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रोफेसर लनमन का व्यवहार उनके प्रति विशेष अच्छा नहीं था। चूंकि यूनीवर्सिटी के अधिकारियों से अमेरिका जाने के पहिले उनकी किसी भी प्रकार की शर्त तय नहीं हुई थी, इसलिए आर्थिक विषय में प्रोफेसर लनमन से उनकी अनबन हुई, जिसमें उन्हें प्रर्याप्त आर्थिक कष्ट सहन पड़ा। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर लनमन के साथ दूसरी अनबन ग्रन्थ के मुखपृष्ठ के नामकरण के विषय में हुई। प्रोफेसर लनमन मुखपृष्ठपर सम्पादक के स्थान पर अपना नाम देना चाहते थे और उसके साथ "कौसाम्बी के सहयोग से वारेन की मूल कृति से" शब्द रखना चाहते थे। किन्तु कौसाम्बी चाहते थे कि वारेन के नाम के अतिरिक्त प्रोफेसर लनमन के साथ ही उनका भी नाम जाय अथवा वे यह भी चाहते थे कि केवल वारेन का ही नाम मुखपृष्ठ पर जाय, क्योंकि वारेन ने वर्षोंतक इस ग्रंथ के लिए परिश्रम किया था और मरते समय अपनी जायदाद यूनीवर्सिटी को इसलिए दे गए थे कि उससे इस ग्रंथ के प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय सुविधापूर्वक संयोजित किया जा सके। इस विषय में दोनों में कोई भी समझौता न हो सका और इसी वार्तालाप में प्रोफेसर लनमन ने आचार्य कौसाम्बी जी के प्रति कुछ अशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया। इसीपर आचार्य कौसाम्बी जी ने हारवर्ड यूनीवर्सिटी का

परित्याग कर दिया और भारत लौट आए। भारत आने के पश्चात् उन्होंने यहाँपर एक ऐसा केन्द्र स्थापित करने के लिए सोचा, जहाँ वे पाली और बौद्ध साहित्य के अध्ययन का कार्य संचालित कर सकें। वे सर रामकृष्ण भंडारकर के पूर्व परिचित थे, इसलिए ज्यों ही वे पूना पहुँचे फरगुसन कालेज के अधिकारियों ने सर रामकृष्ण के द्वारा उनकी सेवाएँ अपनी संस्था के लिए स्वीकृत करा लीं और उन्हें यहीं पाली का प्रोफेसर नियुक्त किया। आचार्य कौसाम्बी जी पाली के ज्ञान के प्रसार के लिए प्रत्येक अवसर का सदुपयोग करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इस कालेज में सन् १९१२ से १९१८ तक प्रशंसनीय कार्य किया। लेखक स्वयम् इसी बीच उनका एक शिष्य रहा है। सन् १९१८ में "विसुद्धि मग्गो" के कार्य के लिए वह फिर अमेरिका गए। वहाँपर उन्होंने ४ वर्ष तक इस मूलग्रंथ के विषय में कार्य किया और भारत वापिस आए। भारत आते ही आते ही उन्होंने कांग्रेस में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और अहमदाबाद के पुरातत्व मन्दिर में सम्मिलित हुए। दिनोंदिन उन्होंने राजनीतिक कार्यों में अभिरुचि दिखाई और शीघ्र ही पूर्णतः गांधीजी के प्रभाव में आए। जब ये गान्धीजी के कार्य-कर्ताओं के कैम्प में व्यस्त थे, उसी समय "विसुद्धि मग्गो" के कार्य को पूर्ण करने के निमित्त अमेरिका से फिर निमंत्रण आया। इस बार सम्पूर्ण कार्य इनपर छोड़ दिया गया और प्रोफेसर लनमन का कोई भी हाथ उसमें न रहा। उन्होंने सफलतापूर्वक कार्य समाप्त किया और जब १९२७ में भारतवर्ष लौटकर आए, उसके पहिले ही उस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य भी समाप्त किया। यद्यपि आचार्य कौसाम्बीजी ने सम्पादन का कार्य समाप्त कर दिया था, किन्तु यूनीवर्सिटी के अधिकारियों ने उसके अनुवाद का प्रकाशन आजतक न किया, जो कि अभीष्ट था। आचार्य कौसाम्बीजी ने अमेरिका छोड़ने के पहिले ही अनुवाद के कार्य का उत्तरदायित्व प्रोफेसर वुड्स के सहयोग से मेरे ही ऊपर छोड़ दिया था, यह अनुवाद का कार्य १९३२ में पूरा हो गया, जो यूनीवर्सिटी के अधिकारियों के पास भेज दिया गया, किन्तु आज बीस वर्ष के पश्चात् भी यूनिवर्सिटी ने उसका प्रकाशन नहीं किया है। आचार्य कौसाम्बीजी ने १९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, इनके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार किया, किन्तु हाईकोर्ट में किसी कानूनी पहलू के कारण छोड़ दिए गए। इसके पश्चात् प्रोफेसर वुड ने "विसुद्धि मग्गो" के अनुवाद के लिए इन्हें पुनः निमंत्रित किया, जिस अनुवाद का उत्तरदायित्व प्रोफेसर वुड्स और मेरे ऊपर सौंपा गया था वह अनुवाद उस समय समाप्त न किया जा सका, क्योंकि लेखक को १९३२ में अमेरिका छोड़ देना पड़ा और फरगुसन कालेज पूना वापस आना पड़ा। अतः लेखक के अमेरिका छोड़ने के कुछ महीने पश्चात् तक आचार्य कौसाम्बीजी को वह कार्य जारी रखना पड़ा। वह कार्य समाप्त करने के पश्चात् वह भारत लौटते समय रूस गए जहाँपर उन्होंने भूतपूर्व प्रोफेसर चेरवास्की को भारतीय तथा बौद्ध दर्शन के अध्ययन में अमूल्य सहायता पहुँचाई, किन्तु रूस में वे अधिक समय तक न ठहर सके। वे शीघ्र भारत लौट आये और इस लेख के लेखक को "विसुद्धि मग्गो" के अनुवाद कार्य में सहायता

करते रहे। वास्तव में यह कार्य उनके २५ वर्ष के विद्वत्ता-मय जीवन की अमूल्य साधना थी।

यह कार्य समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने राष्ट्रीय कार्यों और संस्थाओं में पुनः योग देना प्रारम्भ कर दिया। इस जीवन के कुछ वर्ष बम्बई, सारनाथ, काशी विद्यापीठ और वर्धा में व्यतीत किए। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में विशेष रूप से अस्वस्थ और दुखी रहे। उन्होंने एक पुस्तक अहिंसा विषय पर मराठी में लिखी, जिसने हिन्दू-समाज में काफी उथल पुथल मचाई। जीवन के अन्तिम महीनों में विशेष रूप से अस्वस्थ होने के कारण उन्हें चारपाई पर ही लेटे रहना पड़ा और दिनोंदिन दुर्बल होते गए। उनके सारे शरीर पर खुजली की सनसनी रहा करती थी जिसके कारण वह रात को सो नहीं सकते थे। वे इन दिनों के जीवन से बड़े दुःखी थे। वे यह कदापि नहीं चाहते थे कि उनके जीवन का कोई भाग ऐसा भी रहे जिसमें वे समाज के कल्याण और हित से वंचित रहें। कुछ दिनों के पश्चात् वे कुछ स्वस्थ हुए और अपनी सबसे बड़ी कन्या के पास बम्बई में ही रहने लगे। मृत्यु के पूर्व वे पूज्य गान्धीजी के दर्शन चाहते थे, अतएव वे वर्धा गए। किन्तु गान्धीजी इसके पूर्व ही साम्प्रदायिक संकट के समय शान्ति स्थापनार्थ पूर्वी बंगाल को प्रस्थान कर चुके थे। अतः ४ जून सन् १९४७ यो वर्धा आश्रम में ही अपने सभी ही मित्रों के बीच शान्ति के साथ श्रद्धेय कौसाम्बी जी ने इहलोक यात्रा समाप्त की।

यद्यपि उन्होंने अपने सतत प्रयत्न से अंग्रेजी का सुन्दर अभ्यास कर लिया था, किन्तु उन्होंने अपनी सारी रचनाएँ या तो पाली में कीं या स्वमातृ भाषा मराठी में। आचार्य कौसाम्बी जी द्वारा रचित पाली और मराठी ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है:—

(१) पाली—(१) पाली रीडर—अशोक के अभिलेखों सहित।

(२) 'विसुद्धिमग्गो' जो सन् १९२८ में ही समाप्त हो गया था किन्तु वह हारवर्ड यूनीवर्सिटी ने अभी तक प्रकाशित नहीं कराया।

(३) 'विसुद्धि मार्ग'—देवनागरी प्रकाशन—भारतीय विद्याभवन सीरीज द्वारा प्रकाशित ग्रंथ नं० १

(४) विसुद्धमग्ग—टिप्पणी 'विसुद्धमग्गो' पर पाली टीका।

(५) अभिधम्मत्थ-संगह—पाली टीका सहित देवनागरी प्रकाशन, गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित)।

(६) निदान कथा—

(७) समन्तपादिका—बाहिर-निदान।

(८) पपंच-सूदनी ग्रन्थ।

मराठी ग्रंथः—(१) बुद्ध-धर्म आणि संघ (२) बुद्धलीला सार संग्रह (३) बालकों के लिए कुछ चुने हुए जातक—(४) सुत्तनिपात का अनुवाद। (५) खुद्दक पाठ (नित्य पाठ) (६) समाधिमार्ग—(७) बौद्ध संघ परिचय (८) भारतीय संस्कृति आणि अहिंसा (९) निवेदन (१०) भगवान् बुद्धाचें चरित्र (११) बोधिसत्व।

इसके अतिरिक्त मराठी पत्रिकाओं में कितने ही शोधपूर्ण लेख लिखे। जिनके कई अनुवाद गुजराती में भी हुए।

उनका पाली त्रिपटिक का ज्ञान बड़ा ही गम्भीर था। इसी ज्ञान ने उन्हें बुद्धघोष के विसुद्धि मग्गो के कितने ही उद्धरणों की शोध करने में बड़ी सहायता दी। उनकी विचित्र स्मरण शक्ति से प्रोफेसर लनमन भी आश्चर्यचकित रहते थे। उनकी दार्शनिक पहुँच भी बड़ी गहरी थी—गम्भीर भावों को पाली में व्यक्त करने की शक्ति अद्भुत थी—अभिधम्मत्थ-संग्रह—पर उनकी स्वयं की टीका 'नवनीत' इसका प्रमाण है। 'विसुधिमिग्गो' पर उनकी टिप्पणी पाली विद्यार्थियों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। बौद्ध धर्म के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा और निष्ठा स्तुत्य रही। मराठी भाषा भाषियों को बौद्धधर्म का अमृत पान कराने और मराठी साहित्य को बौद्ध साहित्य प्रदान करने का अपूर्व श्रेय आचार्य कौसाम्बी जी को ही है। कितने ही उनके प्रिय शिष्य आज बम्बई, पूना, बड़ौदा आदि क्षेत्रों में उनके कार्य में दत्तचित्त हैं और पाली का अध्ययन अध्यापन कर रहे हैं।

अपने सामाजिक जीवन में वे सदैव प्रगतिशील विचारक और उदार दृष्टि के व्यक्ति थे। बड़े ही दयालु स्वभाव के थे। कालेज में विद्यार्थियों के बीच मनोहर कहानियाँ सुनाते सुनाते हास्य और विनोद द्वारा मुग्ध कर दिया करते थे। आज उनके शेष परिवार में उनकी स्त्री, एक पुत्र—दामोदर कोसाम्बी जो गणित के एक होनहार पण्डित हैं-- तथा तीन (शिक्षिता) पुत्रियाँ विद्यमान हैं। उनकी दो पुत्रियों और सुपुत्र की शिक्षा अमेरिका में हुई।

इस जीवन चरित से यह भली भाँति ज्ञात होगा कि श्री कौसाम्बी जी का जीवन कितने ही नवयुवकों के लिए प्रेरणा का स्रोत होगा। उनके जीवन का हमारे लिए यह कितना बड़ा उदाहरण है कि एक नवयुवक जिसकी ग्रामीण पाठशाला के अतिरिक्त कोई शिक्षा न हुई, सदैव दीनता का शिकार बनना पड़ा और आज की दुनिया में प्रगति के कोई भी सुअवसर न मिले, किन्तु अपनी सच्ची लगन और तपस्या से उन्होंने अपने आदर्श की रक्षा की। बौद्धधर्म के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा ने उन्हें सदैव कार्यरत रक्खा। इसी उत्साह और स्फूर्ति को लेकर उन्होंने जीवन की कठिनाइयों को पार किया और अपनी साधना में अनवरत रत रहे, जिसके कारण उन्होंने अपनी महती आकांक्षाओं को साकार बनाया। उनके जीवन-चरित का प्रकाश सहस्त्रों नवयुवकों को ज्योति प्रदान करे।

———

—:वे:—

(कुमारी विद्या, बी० ए०)

यशोधरा के जीवन धन वे
बने विजन बनवासी ।
त्याग स्नेह राहुल जननी का,
त्याग राजवैभव अवनी का,
त्याग सभी कुछ चले खोजने,
गृह उस प्राण धनी का ।
वे मुक्ति मार्ग अभिलाषी ॥ बने०
कौशाम्बी के ग्राम ग्राम में,
कपिलवस्तु के धाम धाम में,
दिये ज्ञान का दान—
मगध कौशल के ठाम ठाम में ।
वे मानवता विश्वासी ॥
यशोधरा के जीवन-धन वे
बने विजन बनवासी ॥

(पृष्ठ ८८ के आगे)

समाज बनाने का प्रयास किया था और उनका प्रयास बहुत कुछ सफलिभूत भी हुआ, किन्तु पारस्परिक-वैमनस्य, द्वेष, अन्धविश्वास ने फिर रंग जमाया और भारत में वर्ण-व्यवस्था, ऊँच नीच, छूआ-छूत का फिर प्रचार होने लगा । इसके कारण भारत में फिर फूट पड़ गई और भारत सदियों के लिये गुलाम बन गया । भारत हमेशा महान् आत्माओं को जन्म देता रहा है । जब कि भारत का घोर अधः पतन हो चुका था और और भारतीय अपने महान् अतीत सभ्यता, संस्कृति को प्रायः भूलने लगे थे ऐसे समय में महात्मा गान्धी का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने भगवान् बुद्ध के बतलाये हुये सत्य और अहिंसा का अनुसरण किया और संसार के सामने मिसाल खड़ी कर दी कि सत्यअहिंसा के द्वारा बड़े से बड़ा साम्राज्य भी नष्ट किया जा सकता है । जो लोग अहिंसा में विश्वास नहीं करते उनको आखें खोलकर देखना होगा कि अहिंसा में कितनी ताक़त है और महात्मा गान्धी ने अहिंसा से क्या कर दिखलाया ।

भारत एक स्वतन्त्र देश है और वह उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है और वह बहुत ही शीघ्र संसार के महान् राष्ट्रों में गिना जाने लगेगा । लेकिन भारत महान् तभी बन सकेगा जब यहाँ पर छूआ छूत ऊँच-नीच के भेद-भाव और अन्धविश्वास का अन्त हो जायेगा । लकीर के फ़कीर बने रहने से भारत महान् नहीं बन सकता । भारत की अवनति और फूट का कारण वर्ण-व्यवस्था और अन्धविश्वास को दूर करके ही भारत उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंच सकता है ।

महात्मा धर्मपाल

[गत १७ सितम्बर को सारनाथ में धर्मपाल जयन्ती के अवसर पर भिक्षु पं० श्रीश्रद्धातिष्यजी द्वारा दिया गया भाषण।]

मान्यवर सभापतिजी तथा उपस्थित बन्धुओ !

आज हम लोग विश्व-विख्यात एक महान् वीर को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए इस पुनीत पुण्य-भूमि पर एकत्रित हुए हैं।

संसार में दो प्रकार के वीर माने जाते हैं। एक का कहना है कि दिग्विजय करके राजनैतिक साम्राज्य को स्थापित करने वाले ही वीर हैं। दूसरे का कथन है कि धर्म-विजय करके धार्मिक साम्राज्य को स्थापित करने वाले ही वीर हैं। लेकिन राजनैतिक साम्राज्य की अपेक्षा धार्मिक साम्राज्य को स्थापित करना बड़ा ही कठिन है। राजनैतिक साम्राज्य की स्थापना में पशु और नर-पशु तक काम दे जाते हैं और उनमें डण्डे के बल से काम लिया जा सकता है, परन्तु धर्म-साम्राज्य के लिए ऐसे सैनिक काम नहीं देते। उसके लिए तो विश्व-हित या संसार-लाभ के सामने निजी हित या लाभ को तुच्छ समझने वाले उच्चकोटि के सैनिक ही उपयोगी हैं। भले ही वे संख्या में थोड़े क्यों न हों। वे लोग समस्त विश्व को अपना ही कुटुम्ब समझते हैं। यह अपना है और यह दूसरे का है—ऐसी भावना उनमें कभी उत्पन्न होती ही नहीं।

प्रायः राजनैतिक साम्राज्य को स्थापित करने वाले मानवता को भुलाकर राज्य-प्रसार की लिप्सा को ही उच्च आदर्श मानते हैं, परन्तु धार्मिक साम्राज्य को स्थापित करने वाले मानवता की रक्षा और विश्व-बन्धुत्व का प्रसार चाहते हैं। इसके संबन्ध में श्री एच्० जी० वेल्स ने कहा है—"युद्ध-बल से समस्त विश्व को थराथर कर मृत्यु-मुख में गये हुए एलेकज़ेण्डर, जुलियस् सीज़र, नेपोलियन बोर्नापाट आदि वीरों ने संसार का क्या हित किया? वे केवल इतिहास के सैकड़ों पन्ने बरबाद कर डाले। लेकिन अहिंसाधर्म को संसार में फैलाने के कारण सम्राट अशोक का नाम विश्व के इतिहास रूपी गगन-तल में शुक्र तारा की तरह सदा ही चमकेगा।" श्रीवेल्स का यह कहना केवल सम्राट अशोक के लिए ही नहीं, प्रत्युत आज हम लोग जिन महान् व्यक्ति को श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं, उन महात्मा धर्मपालजी के लिए भी उपयुक्त है।

एलेक्ज़ेण्डर वीर थे। दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण करके उन्हें जीते। मदिरा पिये। बीमार पड़े और इस मर्त्य लोक से चल बसे। उनसे संसार की क्या भलाई हुई? जुलियस सीज़र वीर थे। अनेक राष्ट्रों पर विजय प्राप्त किये। वे हारना जानते ही नहीं थे, किन्तु मिश्र की रानी के साथ नाचे, और मित्र की तलवार का शिकार हो गये। उनसे दुनिया को क्या लाभ हुआ? नेपोलियन बोर्नापाट भी वीर थे। चढ़ते गये। क्रमशः उन्नति करते गये। डींग हाँके और अन्त में कैदी होकर मर गये। उनसे विश्व को क्या शान्ति मिली? —यह मेरी समझ में नहीं आता। लेकिन सम्राट अशोक की

भाँति महात्मा धर्मपालजी भी दिग्विजय से अलग होकर, काम-विलासिता को छोड़कर धार्मिक-विजय से ही संतुष्ट हुए।

सम्राट अशोक की भाँति महात्मा धर्मपालजी धर्म-प्रचारक थे। अशोक ने कोरिया से लेकर सीरिया तक धर्मदूतों को भेजा था, तो धर्मपालजी ने भी भारत से लेकर योरप अमेरिका तक धर्मदूतों को भेजा था। सम्राट अशोक ने बौद्धधर्म के प्रचार के लिए शिला-स्तम्भों को स्थापित किया, तो महात्मा धर्मपालजी ने भी मन्दिर और धर्मशालाओं का निर्माण कराया। सम्राट अशोक समस्त भारत को बौद्ध-शासन के लिए अर्पित करके निर्धन हो गये, तो महात्मा धर्मपालजी ने भी सारी सम्पत्ति बौद्ध-धर्म के पुनरुद्धार में लगा दी। निर्धन, किन्तु सञ्चित पुण्य-सम्भार के धनी सम्राट अशोक अन्त में भिक्षु होकर स्वर्गगामी हुए, तो अकिंचन, किन्तु कुशल कर्मों के सकिंचन महात्मा धर्मपालजी ने भी अन्त में भिक्षु होकर ही देह छोड़ा। सम्राट अशोक के प्रयत्न से आज विश्व के दो तिहाई मनुष्य बौद्ध-धर्मावलम्बी हैं, तो महात्मा धर्मपालजी ने भी उस धर्म को समस्त विश्व में जागृत करने में अपना सारा जीवन लगा दिया।

हम आज उन महान् धर्मात्मा, धर्ममूर्ति एवं धर्म-प्रचारक महात्मा धर्मपालजी के चरण-कमलों में अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—:०:—

❀ दिशा पूजन

भिक्षु महानाम "कोविद"

थौं जि राजगृहस भिक्षाया लागि वनाबले जि खना कि गृहस्थ *छिम्ह प्यागु वसतं पुना, पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण, च्वे, क्वे सकल दिशायात नमस्कार याना चों चोन। बेचारां, थः थःमंनं मस्यू कि दिशापूजन छाय् याना चोना धका। मां बौं तथा अजि-बाज्यापिनि रीति माने याना पूजा याना चोंगु जुल। थुगु प्रकारया अर्थ मदुगु ज्यां याना मनुष्यया शक्ति मफते फुना वनी। तर थुकिं धर्मया विशयस मफते हे संतोष जुई। थुकिं धर्म जा छुं जुई मखु तथा मनुपिसं भापी कि जिमिसं धर्मयाना चोना धका। थ्वया सिनं थ्व ज्यू कि मनूपिसं थयोगु अर्थ मदुगु ज्या छुं मयाय्, छाय् धालसा थुलि जा अमिसं सिया चोनी कि जिमिसं धर्म याना मचोना धका। धर्मया नामे व्यर्थया क्रिड़ा-काण्डं लाभ जा छुं जुई मखु, वया भरोसां पापयात उत्तेजना जक दया वई। तर यदि मनूपिंत थथे धाल, धासा थुकि छुं लाभ मदु, अकिं छिमिसं थ्व ज्यायात् तोःता ब्यू अले अमिसं न्ह्याकोहे भिंगु जूसां साधारण खनं थुई मखु, थूसानं यई मखु अकिं जि अमित थुई के या लागि मेगु हे छाँत छगू पिकया।

* लेखक या अप्रकाशित 'नुग' धया गु सफुलिं कयागु जुल।

जिं वैत धया—छं खुगू दिशा या पूजा छुकिया नितिं याना चोनागु ?

वं धाल—थ्व जा जि मस्यू, भन्ते !

मसीकं यानागु पूजां छु लाभ जुई ?

भन्ते, भलपोलं हे आज्ञा दयका बिज्या हुँ कि छुया नितिं पूजा याय् माः धका ?

अथे सा बाँ लाक न्य—न्हापालाक दिशा तया निं अर्थ ब्राँ लाक थुई कि। गुगु दिशा तया छं पूजन याना चों चोन उगु धाथेंगु दिशात मखु, पूजा याय् माःगु दिशा जा मेगु हे दु।

व गयोगु, भन्ते ?

हे गृहपतिपुत्र, माता-पिता पूर्व-दिशा खः, आचार्य दक्षिण-दिशा खः, स्त्री-पुत्र पश्चिम-दिशा खः, मित्र आदि उत्तर-दिशा खः, सेवक क्वेयागु-दिशा खः, श्रमण-ब्राह्मण च्वेयागु-दिखा खः, थ्व खुगू दिशातया पूंजा बाँ लाक याय् माः।

वं धाल—भन्ते, माता,पिता या पूजा जा ठीक हे खः तर सेवकपिनि पूजा गथे याय् ? सेवकपिस ज जिगु हे पूजा याना चोन।

जिं धया—पूजा या अर्थ ल्हा जोजलपा बिन्ति जक यायूगु मखु किन्तु योज्य विनय प्रेम आदिया नाप नापं अमिगु पालन पोषण आदि यायूगु नं खः। सेवकपिसं छंगू पूजा बाँलाक याना चोंसा याकेब्यू, तथा व जा अमिगु ज्या हे खः, तर वया ठीक ठीक पलसा ब्यू, अपिं नाप प्रेम, दया, करुणा तीः वथ हे अभिगु पूजा खः।

थुगु प्रकारं थ्व खुगू दिशा या पूजा बाँलाक यासा धर्म पालन जुई।

उम्ह गृहपति यात जिगु गँ सार हे यलः तथा वं याना चोंगु दिशा-पूजन तोःता बिल, जिं धया बियागु दिशा-पूजनयात स्वीकार यात।

———

समाचार

धर्मपाल जयन्ती—गत १७ सितम्बर को अनागरिक महात्मा देवमित्र धर्मपालजी की जयन्ती समारोह के साथ सारनाथ में मनाई गई। इस पुण्य-तिथि के उपलक्ष में प्रातःकाल दान आदि पुण्य क्रियाएं की गईं और सन्ध्या को ४ बजे, सुप्रसिद्ध जन-सेवक परमहंस बाबा राघवदास एम० एल० ए० की अध्यक्षता में, मूलगन्ध-कुटी विहार में एक महती सभा हुई। इस जयन्ती-समारोह में महारानी विजय नगरम् और स्थानीय मान्य-गण के साथ बर्मा, चीन और नेपाल के बौद्ध यात्री भी पधारे हुए थे। उक्त अवसर पर प्राइमरी स्कूल के विद्यार्थियों के स्वागत-गान के पश्चात् इन सज्जनों के भाषण हुए—सर्वश्री भिक्षु पं० सद्धातिस्स (लंका), अनागारिक श्रीप्रियदर्शी सुगतानन्द (लन्दन), त्रिपिटकाचार्य भिक्षु श्रीधर्मरक्षित (भारत), चीनी प्रोफेसर श्रीसुत्तु (चीन), प्रोफेसर श्रीलालजीराम शुक्ल (काशी), महाउपासिका आनन्दा जिनिंग्स (अमेरिका) और महाबोधि स्कूल के छात्र मिश्रीलाल जैन तथा त्रिभुवनलाल। वक्ताओं ने धर्मपालजी की

जीवनी तथा देश और धर्म के लिए उनकी महान सेवाओं का वर्णन करके उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। अन्त में सभापति महोदय का ओजस्वी भाषण हुआ। आपने धर्मपालजी के महान व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और बतलाया कि भारत में बौद्ध-धर्म की सेवाओं के लिए उन्हें उन्हीं से प्रेरणा मिली थी तथा उसी प्रेरणा के फलस्वरूप उन्होंने कुशीनगर में अनेक कार्य किया। आगे आपने बतलाया कि ऐसे समय में जब कि योरोप में बर्लिन को लेकर तीन महाराष्ट्रों का तीसरा संग्राम होने जा रहा है, जिसकी कल्पना से हृदय दहल उठता है। प्रयाग से लेकर बनारस, बलिया तक के लोग महा-प्रलयकारी बाढ़ से तबाह हो रहे हैं। भारतवासी भुखमरी और चोरबाजारी के शिकार बने हुए हैं—केवल भगवान् बुद्ध के मध्यम-मार्ग पर चलने की आवश्यकता है। विश्व का दुःख दूर करने में समर्थ है तो मध्यम मार्ग ही। जिसका कि पुनः प्रचार करने के लिए देवमित्र धर्मपालजी ने सिंहल से भारत को प्रस्थान किया था और अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। सभापति ने विश्व-कवि रविन्द्रनाथ टैगोर के 'भारत-गान' के साथ धर्मपालजी के चरणों में अपनी तीसरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

प्रदीप-पूजा, परित्राण-पाठ तथा पुण्यानुमोदन के पश्चात् जयन्ती का कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

गया, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता इत्यादि सभा के अन्य केन्द्रों में भी यह जयन्ती मनाई गई।

महाबोधि कालेज को दान—कलकत्ता के लियोङ्ग मोटर वर्कस् के मालिक श्री पी० एस० लियोङ्ग (चीन) ने अपने पिता श्री लियोङ्ग गिङ्ग के नाम पर महाबोधि कालेज के भवन निर्माणार्थ १०००) का दान दिया है।

सारनाथ में वर्षावास—इस बार पांच भिक्षुओं ने सारनाथ में वर्षावास किया है। लंका की श्रीमती पेरेरा चार प्रत्ययों का प्रबन्ध करती हैं। भगवान् बुद्ध ने प्रथम वर्षावास ऋषिपतन (सारनाथ) ही में किया था।

महाबोधि अस्पताल को दान—श्रीमती एमूनसिंह, लंका रु० ५००)। श्री साधु शंग कलियोग रु० १००)।

पालि महाविद्यालय की परीक्षायें—पालि महाविद्यालय, सारनाथ, (बनारस) की प्रथमा, मध्यमा (शास्त्री), उत्तमा (आचार्य) की परीक्षायें इस वर्ष नवम्बर के प्रथम सप्ताह में होंगी। निश्चित तिथि की सूचना पीछे दी जायेगी। परीक्षा में सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थियों के आवेदन पत्र शीघ्र आने चाहिये।

—रजिष्ट्रार

पालि महा-विद्यालय सारनाथ।

———

"कृषि-संसार"

कृषि सम्बन्धी विविध विषयों पर सचित्र मासिक

खेती बाड़ी, खाद, पांस, डेयरी, पशुपालन, बाग़वानी, भूमि, फसल, मधुमक्खी पालन, सहकारी समिति, ग्राम-सुधार, इत्यादि इत्यादि विषयों पर यदि आप देश विदेश के विद्वानों के सुन्दर लेख पढ़ना चाहते हैं तब आप

"कृषि-संसार"

पढ़िये। यह देश विदेश की कृषि की खबरें आपको घर बैठे देगा। कम्पोस्ट विशेषांक निकल चुका है और अङ्कों की प्रतीक्षा करें। सभी नेताओं ने मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। नमूने की प्रति ।।=) भेज कर मंगायें।

वार्षिक मूल्य ६।।)

व्यवस्थापक—

कृषि संसार, बिजनौर यू० पी०।

यदि आप
शुद्ध लेख
भावुक कवितायें
उत्तम कहानियाँ
उचित टिप्पणी
स्वतन्त्र विचार
संक्षिप्त संवाद
और अन्य
मनमोहक स्तम्भ
तथा
सच्चा प्रचार
चाहते हैं तो अवश्य
अपनाइये

चौराहों पर
घर घर
दुकानों पर
भारत के उचित
अखबारों द्वारा
अथवा सिनेमा में
अपने व्यापार का
प्रचार करना चाहते हैं
तो अवश्य लिखिये
चीफ-एडवरटाइजिंग
एजेन्सी

कल-की-दुनियाँ

अन्तर-राष्ट्रीय हिन्दी सप्ताहिक

तापड़िया बिल्डिङ्ग, जालोरीगेट जोधपुर

रजिस्ट्री की संख्या ए० ७९

THE FAMOUS WALL-PAINTINGS

OF THE

MULAGANDHAKUTI VIHARA,

SARNATH, BENARES.

BY

Mr. Kosetsu Nosu (A renowned Japanese Buddhist Artist)

with

A Short Life of the Buddha and descriptions by

Mr. BASIL CRUMP.

This is a faithful reproduction in original colours of Mr. Nosu's Master pieces on the Walls of the Vihara depicting the life of Lord Buddha. No Buddhist or lover of art can afford to be without a copy of this unique publication.

Size $11\frac{1}{2}'' \times 9''$

22 - Colour plates of the paintings and

1 —Colour plate of the Vihara

Price Rs 7/8. Postage As. 10.

—Do—Uncoloured in Black & White.

Price Rs 2/8. Postage As. 8.

Available from—

The Maha Bodhi Book Agency

SARNATH, BENARES.

THE

NEW DEMOCRAT WEEKLY

Estd. 940 — Founder : Sri. K.M. MUNSHI

The National Journal for the Nation's Intelligentsia

FOLITICS, ECONOMICS, EDUCATION, ART & SCIENCE

Topics discussed by well-known writers, leaders and publicmen

Subscription rates (Inland)

Annual Rs. 8 — Half-yearly Rs. 4·8

Quarterly Rs. 2-8 — Single Copy As. 3

WANTED AGENTS AND REPRESENTATIVES

APPLY TO

THE NEW DEMOCRAT WEEKLY

22. ELPHINSTONE CIRCLE

FORT , BOMBAY 1

प्रकाशक—उ० धर्मजोति, महाबोधि-सभा, धर्मपाल रोड, सारनाथ, बनारस।

मुद्रक—दुर्गादत्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल, बनारस।